लोकवार्ता के अध्ययन का पश्चिमी परिप्रेक्ष्य

अरविन्द अवस्थी
(एसोसिएट प्रोफेसर)
हिन्दी विभाग
वी०एस०के०सी० शासकीय पी० जी० कॉलेज
डाकपत्थर, देहरादून
ईमेलः awastharv@gmail.com

सारांश

लोकवार्ता के संग्रहण और अध्ययन की परम्परा यूरोप में विकासवादी विचार की देन है। विकासवादी पैराडाइम के भीतर वह पहले 'सांस्कृतिक अवशिष्टों की खोज' और फिर 'आदिम मानस की कार्यप्रणाली की खोज' से प्रेरित रही। इस खोज ने लोकसाहित्य या लोकवार्ता को लेकर एक प्रकार की हीनताग्रन्थि का भी पोशण किया। समकालिक अध्ययनों की परम्परा के प्रतिष्ठित हो जाने के बाद यद्यपि पुराने विकासवादी विचार की कठोरता बहुत कुछ कम हो गई है, फिर भी उसे समाप्त नहीं कहा जा सकता। लोकसाहित्य व्यक्तिमानस की सर्जना नहीं है। उसके समुचित अध्ययन के लिए ऐसे परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता है, जिसका निर्माण वैयक्तिक मानस की अवधारणा से परे रह कर हुआ हो। भारतीय आगमों की परम्परा में यह पृष्ठभूमि मिलती है। लोकवार्ता के समुचित अध्ययन के लिए आगम परम्परा के आलोक में निर्मित मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता है।

मूल बिन्दु

लोकवार्ता, लोकसाहित्य, लोकाचार, विकासवाद, पैराडाइम, कालक्रमिक अध्ययन, समकालिक अध्ययन, आदिम मानस, लोकमानस, शिष्ट मानस, आगमशास्त्र।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 11.09.2021
Approved: 24.09.2021

अरविन्द अवस्थी

लोकवार्ता के अध्ययन का पश्चिमी परिप्रेक्ष्य

RJPP 2021,
Vol. XIX, No. II,

pp.317-321
Article No. 41

Online available at *:*
https://anubooks.com/rjpp-2021-vol-xix-no-1

शोधपत्र

'फोकलोर' के अनुवाद के तौर पर 'लोकवार्ता' शब्द का निर्माण प्रसिद्ध पुरातत्वविद् आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा किया गया था।[1] आरम्भ में 'लोकवार्ता' और 'लोकसाहित्य' शब्द समानार्थी रूप में प्रयुक्त होते रहे। परन्तु आजकल इनमें अन्तर किया जाने लगा है। साहित्यशास्त्रियों के लिए तो इनका अन्तर मामूली महत्व का ही है, परन्तु नृतत्वशास्त्री लौकिक रीति–रिवाजों का अध्ययन स्वतन्त्र विशयवस्तु के तौर पर भी करते हैं। लोकसाहित्य के अध्येत्ता अक्सर लोकाचारों को लोकसाहित्य की परिधि से बाहर कर देते हैं, परन्तु नृतत्वशास्त्री लोकाचार और लोकसाहित्य दोनों का ही अध्ययन उन्हें 'लोकवार्ता' के अन्तर्गत रखकर करते हैं। त्रिलोचन पाण्डेय लिखते हैं, ''एक वर्ग की मान्यताओं के अनुसार लोकवार्ता प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करती है, दूसरे वर्ग की मान्यताओं के अनुसार लौकिक रीति–रिवाजों आदि का अध्ययन इससे अलग है अर्थात् इसे केवल लोकसाहित्य तक ही सीमित रखना चाहिए। तीसरे वर्ग की मान्यताओं के अनुसार लोकवार्ता का अर्थ होना चाहिए लोक के सम्पूर्ण सांस्कृतिक अथवा लोकजीवन का अध्ययन।''[2] डॉ0 सत्येन्द्र 'लोकवार्ता' के अन्तर्गत 'कला–विलास' और 'वाणी–विलास' दोनों को सम्मिलित करते हैं तथा लोकाचारों या अनुष्ठानों को 'लोककला–विलास' एवं लोकाख्यानों या लोकसाहित्य को 'लोकवाणी–विलास' का नाम देते हैं। उनके अनुसार लोककला–विलास चार प्रकार का है – उत्पादन सम्बन्धी, संग्रह सम्बन्धी, कौटुम्बिक और सामाजिक। इसी प्रकार लोकवाणी–विलास इस प्रकार का है – लोकगीत, लोकगाथा, लोकोक्ति, मन्त्र, तन्त्राख्यान, दन्तकथा, अवदान, लोककहानी, परीकथा और धर्मगाथा।[3]

नाम चाहे कोई भी दिया जाए, परन्तु यह सच है कि लोकसाहित्य का कोई भी गम्भीर अध्ययन उसमें साहित्यिक तत्व के अलावा भाषातत्व, परम्पराओं, अनुष्ठान, लोकाचार, सांस्कृतिक तत्व, नृतत्व, प्रजातीय तत्व, पुरातत्व आदि की खोजों के सम्मिलित आधार को ग्रहण किए बिना सम्भव नहीं है। इसका कारण यही है कि जिस आधुनिक अर्थ में हम आज साहित्य की अवधारणा को ग्रहण करते हैं, ठीक–ठीक उस अर्थ में लोकसाहित्य साहित्य नहीं है। उसे केवल शब्द की कला समझना कोरा भ्रम है।

'फोकलोर' शब्द का पहला प्रयोग[4] विलियम जे0 थॉमस (1846) नामक ब्रिटिश पुरातत्वशास्त्री ने 'पॉपुलर एण्टीक्विटीज़' के पर्याय के तौर पर किया था। यह प्रयोग उन रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, रीति–रिवाजों और मूढ़ाग्रहों को व्यक्त करने के लिए किया गया था, जो किसी सभ्य समाज के भीतर असंस्कृत सामुदायिक तत्वों के रूप में मिलती हैं। सभ्य समाज के भीतर पाये जाने वाले पिछड़े तत्वों के सांस्कृतिक रूपों का अध्ययन करने के लिए यूरोप में 'फोकलोर' की अवधारणा का जिस समय निर्माण हुआ, वह ज्ञानमामांसा के क्षेत्र में विकासवादी विचार के उद्भव और प्रसार का युग था। लोकवार्ताविशयक अध्ययनों की यह ऐतिहासिक नियति ही थी कि वे अपने जन्म के साथ ही हीनताग्रन्थि से जुड़ गए। इसके पीछे औद्योगीकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि कार्य कर रही थी।

लोकवार्ताओं के संकलन का कार्य उन्नीसवीं सदी के यूरोप में आरम्भ हुआ। औद्योगीकरण के फलस्वरूप वहाँ किसानी समाज और संस्कृतियाँ नष्ट हो चुके थे। उनके सांस्कृतिक अवशेष आधुनिक औद्योगिक समाज में अभी चले आ रहे थे। यूरोपीय मानस एक तरफ तो अपनी सुनिश्चित ऐतिहासिक प्रगति के जातीय अहं से ग्रस्त था, दूसरी तरफ किसानी संस्कृति के सरल और प्राकृतिक जीवन के विलुप्त होने की पीड़ा को भी भोग रहा था। औद्योगिक संस्कृति की चमक–दमक इतनी

चमत्कृत करने वाली थी कि यूरोपीय मानस सुनिश्चित तथा कभी न वापस होने वाली प्रगति की अवधारणा को किसी मूलभूत नियम की तरह मान बैठा। इसी दृढ़ विश्वास के भीतर से आधुनिक ज्ञानमीमांसा के वे तमाम नैरेटिव पैदा हुए जो मॉर्गन, डार्विन, स्पेन्सर आदि से लेकर फ्रॉयड और मार्क्स तक के विकासवादी चिन्तन को लेकर सामने आए। विकासवादी पैराडाइम के भीतर समाज की प्रगति के सुनिश्चित चरणों को वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ पद्धति से पहचानने, विवेचित करने और नियमबद्ध करने की चेष्टाएँ होने लगीं। लोकवार्ताओं के संकलन कार्य भी इसी क्रम में आरम्भ हुए।

विकासवादी पैराडाइम के भीतर प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों में नए ढँग का अनुसंधान कार्य तेजी से फैला। चार्ल्स डार्विन ने जीव–जगत के भीतर जाकर प्रभूत मात्रा में आँकड़ों का संग्रहण किया तथा विकासप्रक्रिया की प्रकृति को समझने की चेष्टा की। उसके निष्कर्षों का अन्तरानुशासनिक प्रक्षेपण भी हुआ। परन्तु केवल जैविकता मनुष्य की नियति को तय नहीं करती। मानव समाज में विकासप्रक्रिया की प्रकृति को जानने के लिए ऐसे आँकड़ों की ज़रूरत थी जो मानव समाज द्वारा उत्पन्न वास्तविकताओं के बारे में बताते हों। एक मुश्किल यह भी थी कि यूरोपीय विश्लेषकों के सामने सामाजिक परिवर्तन के जो आँकड़े थे, वे केवल मिटते हुए किसानी यूरोप और नये बनते औद्योगिक यूरोप से ही सम्बन्धित थे। अकेली एक घटना से बड़े स्तर का सैद्धान्तिक सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता था। यूरोपीय विद्वान् प्रगति की अवधारणा को इतिहास के मूलभूत नियम के तौर पर समझना चाहते थे। इसके लिए उन्हें किसानी समाज से भी पीछे तथा औद्योगिक समाज से आगे झाँकने की आवश्यकता थी। उन्होंने शेष दुनियाँ के गैर–औद्योगिक समाजों की संस्कृतियों का तथ्यसंग्रहण कार्य आरम्भ किया। इनमें नाना प्रकार की कृषक, वनवासी, जलवासी, आदिवासी संस्कृतियाँ आती थीं। इन्हें वे प्राक्–औद्योगिक समाज कहते थे। इसका अभिप्राय यही था कि देर–सबेर उन्हें भी औद्योगीकरण की ओर आना पड़ेगा, क्योंकि ऐतिहासिक प्रगति की यही सुनिर्धारित, अपरावर्तनीय दिशा है। इस प्रकार विकासवादी पैराडाइम के भीतर शेष दुनियाँ की तमाम विविधतामय संस्कृतियाँ प्राक्–औद्योगिक सांस्कृतिक अवशिष्ट में बदल गईं। यूरोप उनके आईने में अपने अतीत की छवियाँ देखने लगा। 'सांस्कृतिक अवशिष्टों की खोज' की इस प्रेरणा से ही लोकवार्ताएँ संकलित की जाने लगीं।

विकासवादी पैराडाइम की संकीर्णता से दूर होकर शेष दुनियाँ के सांस्कृतिक तथ्यों को अधिक खुले मन से ग्रहण करने की चेष्टा भी कई यूरोपीय विद्वानों ने की। इन विद्वानों में क्रिस्टोफर कॉडवेल और रेमण्ड विलियम्स जैसे मार्क्सवादी भी थे, जिन्होंने यूरोप की नष्ट होती हुई किसानी संस्कृति के बारीक और मार्मिक अध्ययन प्रस्तुत किए। अल्फ्रेड क्रोबर, रॉबर्ट रेडफील्ड, मिल्टन सिंगर, मैकिम मैरियट आदि समाजशास्त्रियों ने विकासवादी पैराडाइम से बाहर रह कर सांस्कृतिक विसरण, सार्वभौमीकरण, स्थानीयकरण, दीर्घ परम्परा, लघु परम्परा आदि अवधारणाओं के विकास के सहारे सांस्कृतिक परिवर्तन के तथ्यों को समझने के उद्योग किए। परन्तु एक संस्कृति द्वारा दूसरी संस्कृति का बाहर से किया जाने वाला अध्ययन जिन समस्याओं से ग्रस्त होता है, वही समस्याएँ इन अध्ययनों की सीमाएँ बन गईं।

लोकवार्ता के संग्रहण और अध्ययन की परम्परा प्रधानतया विकासवादी पैराडाइम के भीतर ही चली। उन्नीसवीं सदी के मध्य में ग्रेट ब्रिटेन में बनी संस्था 'फोकलोर सोसाइटी' की वार्षिक आख्या पढ़ते हुए सोसाइटी के पहले सचिव जॉर्ज लारेन्स गोमे (1879) ने सुझाव दिया कि इस परिषद् द्वारा

लोकवार्ता के अध्ययन को जंगली जातियों के अध्ययन से संयुक्त कर देना चाहिए। त्रिलोचन पाण्डेय लिखते हैं, ''गोमे तत्कालीन नृतत्वशास्त्री एडवर्ड टेलर के विचारों से बहुत प्रभावित थे और लोकवार्ता को सांस्कृतिक अवशेष के रूप में ग्रहण कर रहे थे।''[5] इसी दृष्टिकोण से लोकवार्ता को परिभाषित करते हुए शार्लेट सोफिया बर्न ने लिखा, ''लोकवार्ता एक जातिबोधक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति–रिवाज़, कहानियाँ, गीत और कहावतें आती हैं।''[6] बर्न लोकवार्ता के संग्रहण से प्राप्त अवशिष्ट सांस्कृतिक तत्वों के सहारे आदिम मानस की क्रियाशीलता और प्रकृति को समझना चाहती थीं। विकासवादी धारणा के अध्येत्ताओं की रूचि यह जानने में थी कि वैज्ञानिकता और आधुनिक तर्कणा शक्ति से सम्पन्न होने से पहले वैयक्तिक मानस किस तरह से कार्य करता था। इस तरह 'आदिम मानस' या 'प्रिमिटिव माइण्ड' की कार्यप्रणाली को लोकवार्ता के अध्ययन के सहारे समझने के उद्योग होने लगे। इसी वैचारिक प्रेरणा से स्पिनोझा ने लोकवार्ता को 'आदिम मनुष्य के मन की सीधी–सच्ची अभिव्यक्ति'[7] बताया। आदिम मानस और शिष्ट मानस का यह द्वैत आगे चल कर चेतन–अचेतन के सिद्धान्त से जुड़ गया। इस प्रकार विकासवाद के अन्तर्गत मनोविज्ञान मानवविज्ञान के निकट आ गया।

संरचनावाद के उद्भव और विकास के साथ कालक्रमिक अध्ययन क्षीण पड़ने लगे और समकालिक पद्धति के अध्ययनों की प्रतिश्ठा हो चली। विकासवादी विचार का प्रभाव भी कम हो चला। फ्रैन्ज बोआस ने लिखा, ''इसी के साथ हम विकासवादी सिद्धान्त से एक मौलिक प्रश्न को लेकर टकराने लगते हैं। किसानी और सौदागरी समाज के बीच क्या कालक्रमिक सम्बन्ध है। –मनोविज्ञान की दृष्टि से ऐसा कुछ भी नहीं है जो किसानी और सौदागरी जीवन के बीच कोई सुस्पष्ट कालक्रमिक सम्बन्ध स्थापित करने में मददगार हो सके।''[8] इस प्रकार बाद की मनोवैज्ञानिक खोजों से स्पष्ट हो चला कि 'आदिम मानस' और 'शिष्ट मानस' के बीच ऐसा कोई कालक्रमिक सम्बन्ध नहीं है। इसलिए आदिम मानस की अभिव्यक्तियों के रूप में लोकवार्ता को गुज़रे जमाने के सांस्कृतिक अवशेषों की तरह लेना और आधुनिक मानस को उससे अधिक विकसित समझना भी ठीक नहीं है। फिर भी लोकवार्ता के अध्येत्ता और समाजशास्त्री प्राचीन मान्यताओं को अभी छोड़ न सके थे। प्रसिद्ध रूसी लोकवार्ताविद् वाई0एस0शोकोलोव ने 'रशियन फोकलोर' में लिखा, ''लोकवार्ता की वस्तु और रूप में प्राचीन संस्कृतियों के अवशेषों की उपस्थिति न मानना असम्भव है।''[9]

परम्परागत विकासवादी विचार के अन्तर्गत लोकमानस को आदिम मानस की कार्यप्रणाली के निकट मानते हुए उसे तर्कणा और बुद्धिसम्मत ज्ञान की अपेक्षा तर्कातीत, रहस्यमय तथा अभेदबुद्धि से जोड़ा गया था। डॉ0 सत्येन्द्र लिखते हैं, ''प्रसिद्ध सांस्कृतिक नृतत्वशास्त्री लेवी ब्रूल ने 'आदिम मनोवृत्ति' नामक पुस्तक में बताया है कि आदिम मानस विवेकपूर्वी और रहस्यशील होता है। विवेकपूर्वी इसलिए होता है कि वह विषमीकरण के नियम से अबोध रहता है, फलतः वह ऐसे दो विषयों, विचारों या भावों को एक साथ स्वीकार करने में भी हिचकता नहीं, जिनमें उसे कोई सम्भावना नहीं प्रतीत होती। वह रहस्यशील इसलिए होता है कि अनुभव की बातों की व्याख्या वह अधिकांशतः पराप्राकृत के द्वारा करता है, प्राकृतिक कारणों से नहीं। फ्रेजर ने 'गार्नर्ड शीब्स' में लेवी ब्रूल की इस मान्यता को स्वीकार कर लिया है कि आदिम मानव की विशेषता है कि वह विवेकपूर्वी और रहस्यशील होता है, किन्तु इसके साथ ही यह टिप्पणी दी है कि इसके अर्थ यह नहीं हैं कि शिष्ट मानव इन दोनों से

मुक्त होता है। आदिम मानस और शिष्ट मानस में केवल कोटि–क्रम का ही अन्तर है, प्रकार का अन्तर नहीं।''[10]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोकमानस वस्तुतः केवल आदिम मानस या आदिम संस्कृतियों का ही मानस नहीं है। वह आज के मनुष्य का मानस भी है। इसी आधार पर जुंग ने वैयक्तिक अचेतन के एक बड़े हिस्से को प्रजातीय अचेतन के रूप में विश्लेषित किया। इससे आधुनिक मानस की क्रियाशीलता के एक अंग के रूप में लोकवार्ता के अध्ययन की भी सम्भावना बन गई। परन्तु इतने के बावजूद जुंग के यहाँ भी वैयक्तिक मनोविज्ञान विकासवादी पैराडाइम से बाहर नहीं जा सका। इस प्रकार 'सांस्कृतिक अवशिष्ट' या 'आदिम मानस' की खोज से जुड़ी हीनता ग्रन्थि लोकवार्ता के अध्ययन के साथ लगी चली आई।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोकवार्ता के संकलन और अध्ययन का पश्चिमी परिप्रेक्ष्य विकासवादी विचार से कमोबेश प्रभावित रहने के कारण हीनताग्रन्थि से ग्रस्त रहने के लिए अभिशप्त है। आज इस बात को ठीक से समझने की आवश्यकता है कि लोकसाहित्य या लोकवार्ता का स्वस्थ और समुचित अध्ययन तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके विवेचन का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य वैयक्तिक मानस की भ्रान्त अवधारणा से मुक्त न हो। लोकवार्ता लोकमानस की अभिव्यक्ति है। वह अपौरूशेय है। हमारी आगम परम्परा के अनुसार मनस् तत्व की स्थिति व्यक्ति से पहले है, उसके बाद नहीं। लोकवार्ता वैयक्तिक मानस से परे इसी मनस् तत्व की अभिव्यक्ति है। क्या लोकवार्ता के अध्ययन हेतु परिप्रेक्ष्य निर्माण के प्रश्न के सन्दर्भ में हमें अपनी आगम परम्परा से निष्पन्न होने वाली मनोविशयक संकल्पनाओं पर नये सिरे से विचार नहीं करना चाहिए ?

सन्दर्भ

1. बाबुलकर,मोहनलाल. गढ़वाली लोकसाहित्य की प्रस्तावना. नई टिहरी : भागीरथी प्र0, 2004, पृ0 47
2. पाण्डेय, त्रिलोचन. लोकसाहित्य का अध्ययन. इलाहाबाद : लोकभारती प्र0, 1978, पृ0 118
3. सत्येन्द्र. लोकसाहित्य विज्ञान. आगरा : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1971, पृ0 87–89
4. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका, पृ0 496
5. पाण्डेय, त्रिलोचन. लोकसाहित्य का अध्ययन. इलाहाबाद : लोकभारती प्र0, 1978, पृ0 83
6. पाण्डेय, त्रिलोचन. लोकसाहित्य का अध्ययन. इलाहाबाद : लोकभारती प्र0, 1978, पृ0 83
7. सत्येन्द्र. लोकसाहित्य विज्ञान. आगरा : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1971, पृ0 4
8. सत्येन्द्र. लोकसाहित्य विज्ञान. आगरा : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1971, पृ0 6–7
9. सत्येन्द्र. लोकसाहित्य विज्ञान. आगरा : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1971, पृ0 3–4
10. सत्येन्द्र. लोकसाहित्य विज्ञान. आगरा : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1971, पृ0 8